15 praveen_jha_Layout 1 22-02-2024 16:09 Page 399

ध्रुपद में स्त्री स्वर : हिंदुस्तानी संगीत का सामाजिक पक्ष

प्रवीण कुमार झा

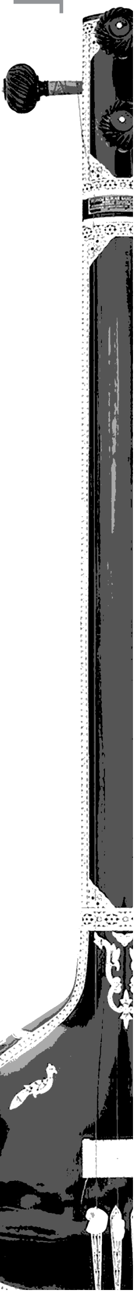

हिंदुस्तानी संगीत का समाजशास्त्र अपेक्षाकृत उपेक्षित क्षेत्र है। यह देखा गया है कि संगीत पारम्परिक सामाजिक संरचना जैसे धर्म, जाति, लिंग, राष्ट्रीयता से परे भी है और बँधा भी है। स्त्रियाँ भी संगीत का अभिन्न हिस्सा रही हैं लेकिन संगीत के एक पक्ष में महिलाओं की भूमिका कम रही है। ध्रुपद संगीत, हिंदुस्तानी संगीत का एक रूढ़ पक्ष रहा है, जिसमें कुछ प्रायोगिक बदलाव हुए, लेकिन सैद्धांतिक बदलाव कम हुए। ख़याल गायकी और उप शास्त्रीय संगीत जैसे ठुमरी या ग़ज़ल में महिलाओं ने जिस तरह बढ़-चढ़ कर हिस्सा लिया, ध्रुपद में कम लिया। इस लेख में हिंदुस्तानी संगीत के समाजशास्त्र से गुज़रते हुए इसी ख़ास पहलू पर चर्चा की गयी है। लेख में ध्रुपद और ख़याल संगीत के संरचनात्मक अंतर और वंशगत गुरु-शिष्य परंपरा की चर्चा करते हुए स्त्री स्वरों की तलाश की गई है। पिछले कुछ दशकों में महिलाओं की भागीदारी ध्रुपद में बढ़ी है, लेकिन अब भी ध्रुपद सम्मेलनों तक उनकी पहुँच कम है। पितृसत्तात्मक सामाजिक संरचना से इतर भी ऐसे प्रश्न उठते हैं कि स्त्रियों ने स्वयं संगीत के इस पक्ष को असहज माना अथवा उनको इससे दूर रखा गया? अगर ध्रुपद संगीत तकनीकी कारणों से स्त्रियों से दूर रहा तो यह प्रश्न भी उठता है कि ऐसा किन कारणों से हुआ होगा? सवाल यह भी है कि समय के साथ ऐसे कौन से बदलाव हुए कि ध्रुपद उनके लिए सहज होता गया?

आम तौर पर देखें तो संगीत में निश्चित रूप से स्त्रियों की महती भूमिका रही है। गायन, वादन या नृत्य, ऐसा कोई भी आयाम नहीं, जहाँ स्त्रियाँ मंचों तक न पहुँची हों। लेकिन ध्रुपद गायन में ऐसी स्थिति नहीं है। संगीत के ध्रुपद रसिक कुछेक गायिकाओं के नाम सुझा सकते हैं किंतु उन मंचों को ग़ौर से देखने पर यह स्पष्ट नज़र आएगा कि हिंदुस्तानी संगीत के इस अंग में स्त्रियाँ बेहद कम हैं।

इन सवालों के पार्श्व में संगीत और समाज के रिश्ते हैं। ये एक-दूसरे को कैसे और कितना प्रभावित करते हैं और इन सम्बन्धों का अध्ययन कैसे किया जाए? इसके लिए हमें संगीत के इतिहास और उसके समाजशास्त्र की पड़ताल करनी होगी।

15 praveen_jha_Layout 1 22-02-2024 16:09 Page 400

संगीत, समाज और प्रकृति की ही उपज है। इसमें अन्य कलाओं की तरह ही समाज की छवि भी देखी जा सकती है। इसका अर्थ यह नहीं कि मनुष्य मात्र समाज और प्रकृति के मध्य रहने से स्वतः कला सृजन करने लग गया। कला की उपज मनुष्य द्वारा अपने अस्तित्व के लिए किए गए संघर्ष के फलस्वरूप ही हुई। समाज के बदलते स्वरूप के साथ संगीत का भी स्वरूप बदलता रहा है। इसी कारण हम किसी संगीत को सुन कर यह अंदाज़ा लगा पाते हैं कि यह किस क्षेत्र और किस काल का संगीत है, अथवा यह अंदाज़ा लगा सकते हैं कि अमुक संगीत पर किन-किन संस्कृतियों का प्रभाव हो सकता है। किन सामाजिक अथवा ऐतिहासिक परिस्थितियों से वह संगीत जन्मा होगा, यह अंदाज़ा भी संगीत सुनकर लगाया जा सकता है। जैसे मांड गीत 'केसरिया बालम आओ री, पधारो म्हारे देस' सुन कर यह अंदाज़ा लगता है कि यह राजस्थान का लोक संगीत है जो संभवतः वहाँ के राजपूत शासकों के दरबार में बना होगा।

समाजशास्त्र संगीत का अपेक्षाकृत उपेक्षित पक्ष है। सत्यवती शर्मा इस उपेक्षा के दो मुख्य कारण बताती हैं : पहला, समाजशास्त्र की दृष्टि और पद्धति से संगीत अध्येताओं का अपरिचय; दूसरा, संगीत की दुनिया से समाजशास्त्रियों की उदासीनता (शर्मा, 1995 : i) हालाँकि यह भी सत्य है कि भारत में संगीत अध्येताओं की एक लम्बी परंपरा रही है, जो संगीत के ऐतिहासिक और तकनीकी पक्षों पर लिखते रहे हैं। हिंदुस्तानी संगीत के समाजशास्त्र पर निवेदिता सिंह (2004) और सत्यवती शर्मा (1995) ने शोध पुस्तकें लिखी हैं, जिसमें भारतीय संगीत के आयामों पर आलेख लिखे गए हैं। उनमें विदेशी समाजशास्त्रियों के माध्यम से भी हिंदुस्तानी संगीत को देखा गया है। डैनियल न्यूमन ने उत्तर भारतीय संगीत और समाज पर अपनी पुस्तक (1990) में विस्तृत चर्चा की है। स्त्रियों, ख़ासकर ठुमरी गायिकाओं और तवायफ़ों पर कई शोध (दीवान, 2019) हुए हैं। वहीं, पश्चिमी समाजशास्त्रियों ने संगीत समाजशास्त्र (सोसियोम्यूज़िकॉलजी) और संजातीय संगीत शास्त्र (एथ्नोम्यूज़िकॉलजी) पर नियमित कार्य किया है और इसे भिन्न विधा के रूप में विकसित किया है (एलिस, 2009)।

सत्यवती शर्मा जैसे कुछेक प्रयासों को छोड़ दें तो भारतीय संगीत के समाजशास्त्रीय पहलुओं का अध्ययन बेहद कम है। ऐसे में भारत में संगीत में महिलाओं की भूमिका पर काम नहीं के बराबर ही है। पश्चिमी लेखन में स्त्री और संगीत पर विमर्श एलन कोसकोफ़्फ़ (1987) और बारबरा हैम्प्टॉन (1991) जैसे शोधार्थियों ने किया है, जिनसे यह ज्ञात होता है कि पश्चिमी संगीत में भी लिंग-भेद मौजूद हैं। जैसे ऐन शपीरो (1991) ने एक रॉक बैंड को यूँ उद्धृत किया है कि 'अगर हम किसी लड़की को अपने बैंड में शामिल करें, तो उसकी आवाज़ पूरी तरह से अलग होगी। ऐसी स्थिति में उसकी आवाज़ शायद मुख्य बन जाए, और हम सहायक रह जाएँ।' पुरुष और स्त्री के स्वरों में अंतर की चर्चा सत्यवती शर्मा ने भी की है। उनके अनुसार स्त्री और पुरुष की बनावट के अंतर से उनके संगीत में भी अंतर दिखाई देता है। लेकिन उन उदाहरणों पर चर्चा कम हुई है, जब पुरुष ने स्त्री की वजह से स्वयं को असुरक्षित महसूस किया हो।

15 praveen_jha_Layout 1 22-02-2024 16:09 Page 401

शपीरो स्त्री और संगीत विमर्श के कुछ बिंदु गिनाते हैं। उनके अनुसार 'संगीत और स्त्री' पर विमर्श मुख्यतः स्त्रियों ने ही किए। उन्होंने अपने विमर्श में उन्हीं स्त्रियों को सम्मिलित किया जो पुरुष संगीतकारों के समकक्ष रही हैं। यह भी कि संगीत का स्त्री पक्ष स्वयं संगीत नहीं, बल्कि उसका रचित/लिखित पक्ष (गीत/बंदिश) है। जैसे युगल गायकी में स्त्रियाँ जो वाक्य बोलती हैं, वे स्त्री पक्ष के वाक्य होते हैं, किंतु संगीत तो लिंग भेद से मुक्त होता है। वे इस बात पर भी बल देते हैं कि संगीत में स्त्री विमर्श उस संस्कृति के अन्य पहलुओं से अलग होता रहा है। हिंदुस्तानी संगीत के लिहाज़ से भी शपीरो के तर्क बहुधा उपयुक्त लगते हैं।

अगर हम समूची भारतीय संगीत परंपरा की बात करें तो धर्म और जाति के सवालों पर जिस तरह कई बार इसने बाड़ेबंदियाँ तोड़ीं, उसी तरह महिलाओं का उन्मुक्त रूप भी यहाँ देखा जा सकता है। अगर तवायफ़ी और देवदासी परंपरा से इतर भी देखें तो स्त्रियाँ मंचों पर प्रस्तुति लंबे समय से देती रही हैं। महाराष्ट्र और दक्षिण भारत में आज तक कमोबेश एक रूढ़ परंपरा क़ायम है कि स्त्रियों को विवाह योग्य बनाने के लिए संगीत शिक्षा दी जाती है। नमिता देवी दयाल ने पुस्तक *म्यूज़िक रूम* में अपना ही उदाहरण दिया है कि उन्हें संगीत इसी कारण सीखना पड़ा। उस्ताद अब्दुल करीम ख़ान (किराना घराना) की बेटी हीराबाई बरोडकर (1905-1989) इसके शुरुआती उदाहरणों में है। अल्लादिया ख़ान के घराने में केसरबाई केरकर (1892-1977), धोन्धुताई कुलकर्णी (1927-2014), मोगुबाई कुर्दिकर (1904-2001) जैसे उदाहरण हैं। मैहर घराने से अन्नपूर्णा देवी (1927-2018) और शरण रानी (1929-2008) ने क्रमशः सुरबहार और सरोद बजाया। लेकिन ये सभी ख़याल गायकी के उदाहरण हैं।

ख़याल गायकी से उलट ध्रुपद के इतिहास में स्त्रियाँ गिनी-चुनी ही मिलती हैं। यह कुछ ऐसी ही पहेली है, जो समाज में प्रचलित रूढ़ धारणाओं जैसे 'महिलाएँ गणित में कमज़ोर होती हैं', या 'महिलाएँ गाड़ी अच्छी नहीं चलातीं' या 'महिलाएँ हड्डी रोग की शल्य-चिकित्सक नहीं हो सकतीं' से मिलती है। इस विषय पर अगर हम सिलसिलेवार चर्चा करना चाहें, तो हमें सांगीतिक और सामाजिक पक्ष, दोनों से गुज़र कर ही ध्रुपद में स्त्रियों की सीमित भूमिका के कारकों को तलाशना होगा। पहले हमें हिंदुस्तानी संगीत के ध्रुपद और ख़याल अंग के तकनीकी पक्ष और इतिहास को समझना होगा। यह स्पष्ट छवि बनानी होगी कि ध्रुपद और

15 praveen_jha_Layout 1 22-02-2024 16:09 Page 402

ख़याल में अंतर क्या है, ध्रुपद की वर्तमान और ऐतिहासिक बानी[1] अथवा घरानों की चर्चा करनी होगी। साथ ही हमें ध्रुपद में स्त्रियों का जो भी योगदान रहा है, अथवा नहीं रहा है, उसकी समीक्षा करनी होगी। इनके समानांतर ही हमें समाज में स्त्री और संगीत में स्त्री की स्थिति का आकलन करना होगा। पड़ताल की इसी प्रक्रिया से हम समझ सकेंगे कि ध्रुपद में स्त्रियाँ क्यों कम रहीं और भविष्य में उनकी अधिक भूमिका के लिए किस तरह के प्रयास किए जा रहे हैं, अथवा किए जा सकते हैं।

ध्रुपद का सबसे प्राचीन रूप साम-गान से जोड़ा जाता रहा है, जो सामवेद की वैदिक गायन परंपरा थी। इनके दो रूप थे – छंद और प्रबद्ध। प्रबद्ध रूप को ध्रुपद के पदों के रूप में गाया जाता था। पिंगल के छंद सूत्र में ध्रुव नामक छंद है, जिसे 1-2-1-1-1 (छह) मात्रा में गाने की अनुशंसा की गई है। ध्रुपद भी पारम्परिक रूप से बारह मात्रा के चौताल में गाया जाता है, जो संभव है कि उसी से विकसित हुआ हो (आर. के. दास, 2014)। वैदिक काल के समय ध्रुपद किस रूप में था, यह प्रामाणिक रूप से नहीं कहा जा सकता। गंधर्व वेद में साम-गान का उल्लेख है, किंतु ध्रुपद नामक गायन शैली का उल्लेख नहीं। रागों और रागिनियों की व्याख्या तो भरत मुनि के नाट्यशास्त्र और ग्यारहवीं सदी के कार्नात वंश (मिथिला) के राजा नान्यदेव के भरत-भाष्य जैसी रचनाओं में हो चुकी थी। इसका गायन उस काल में प्रबंधित ही था और दक्षिण भारत में रूढ़ प्रबंधित गायन होता रहा। उत्तर भारत में मुस्लिम शासकों का प्रभाव आ रहा था, जिससे संगीत में भी बदलाव स्वाभाविक था। शास्त्रीय रागों की गायन-शैली में क़व्वाली और ख़याल[2]शैली का जन्म हो रहा था। वहीं, स्वतंत्र रूप से ध्रुपद गायन शैली भी विकसित हो रही थी। सारंग-देव (1125-1247) के *संगीत रत्नाकर* में ध्रुव-वीणा वर्णित है।[3] तेरहवीं सदी में अलाउद्दीन ख़िलजी के लिए गोपाल नायक का लिखा एक ध्रुपद भी उल्लेखित है।[4] ग्वालियर के तोमर वंश के राजाओं ने ध्रुपद संगीत को रूप देने में ख़ास भूमिका निभायी। पुष्टिमार्गी वैष्णव महाप्रभु वल्लाभाचार्य (1479-1531) के समय राजा मान सिंह तोमर (शासनकाल 1486-1516) ने *मान-कुतूहल* में कुछ विष्णुपद और कुछ ध्रुपद लिखे। इसकी चर्चा फ़क़ीर-उल्लाह ने अपनी पुस्तक *राग दर्पण* में की है। यह माना जा सकता है कि आज का ध्रुपद कमोबेश उस काल में ही विकसित हुआ। स्वामी हरिदास, बैजनाथ मिश्र (बैजू बावरा) और रामतनु पांडेय (तानसेन) का काल-खंड भी इसी सातत्य से मेल खाता है।

जैसे-जैसे ध्रुपद गायन स्थापित होने लगा, इसकी भिन्न-भिन्न शैलियाँ जन्म लेने लगीं, जो बानी(वाणी) कहलायीं। मान्यता है कि ये स्वामी हरिदास द्वारा प्रबद्ध की गई। ध्रुपद की

---

[1] बानी शब्द 'वाणी' का अपभ्रंश है, जो ध्रुपद की भिन्न-भिन्न शैलियों के लिए प्रयोग होता है.

[2] ख़याल का अर्थ है सोच, या कल्पना.

[3] सारंग देव (1943) : 76·

[4] ध्रुपद है – 'धकदलन रे प्रबल्लनाद सिंघनाद बल अपबल वक्कर। कुंडान धीर अंडान मिलवात चपल चाप अचपल अक्कअर।। गीत गावत नाइक गोपाल विद्यावर साहिनसही अल्लावदी।। तपै डिली नरेस जाके वसुधा सुचित तुअत्रक्कधर।।' (गजेंद्र नारायण सिंह 2011 : 55)·

15 praveen_jha_Layout 1 22-02-2024 16:09 Page 403

चार वाणियाँ कही जाती हैं— डागुर (या डागर), खंडार, नौहर, गौहार (आर. के. दास, 2019)। गजेंद्र नारायण सिंह लिखते हैं :

> मअदनुलमौसिक़ी के प्रणेता हकीम मोहम्मद करम इमाम के अनुसार ग्वालियर निवासी तानसेन 'गौहारी' बानी के, खंडार निवासी समोखन सिंह 'खंडार' बानी के, दिल्ली के निकट डांग क्षेत्र के निवासी ब्रजचन्द 'डागुरी' या 'डागर' बानी के तथा राजपूताना के नौहा (नौहार) वासी श्रीचंद 'नौहार' बानी के प्रवर्तक हुए।

इन वाणियों के लिए एक प्रचलित पद है,

> ज़ोर ज़ोर से खंडार गाए
> मधुर बोल से नौहर लेवे
> साँस बड़ी है गौहर की
> अलापचारी है डागुर की

ध्रुपद की ये वाणियाँ मुग़ल दरबार में जब तानसेन के माध्यम से पहुँची, तो वहाँ भी स्थापित हुई। आज मौजूद सभी वाणियाँ स्वयं को तानसेन और स्वामी हरिदास से जोड़ती हैं। वहीं अधिकांश ख़याल घराने भी तानसेन से अपनी पहचान जोड़ते रहे हैं। इस कारण इन दोनों शैलियों में भेद तानसेन के बाद ही उभरता है। मान्यता है कि मोहम्मद शाह 'रंगीला' के समय सदारंग और अदारंग ने ख़याल गायकी को विस्तार दिया, और उसके बाद यही गायकी लोकप्रिय होती गयी। लेकिन, मुग़ल दरबार के बाहर ध्रुपद गायकी क़ायम रही।

ध्रुपद का रिश्ता दक्षिण भारतीय संगीत से भी है। हिंदुस्तानी और कर्नाटक संगीत, दोनों, अपना उद्भव साम-गान से जोड़ते हैं, और दोनों के पद अविचल रहे हैं। ध्रुपद और कर्नाटक संगीत के कई पद संस्कृत में हैं। मान सिंह तोमर एवं पुष्टिमार्गी कवियों के समय ये लोक-भाषाओं (ब्रजभाषा, अवधी आदि) में लिखे जाने लगे। शकुंतला नरसिम्हन लिखती हैं :

> कृति/कीर्तन रूप (जो कर्नाटक संगीत का प्रचलित रूप है) में ध्रुपद से बहुत साम्य है, और पल्लवी रूप का भी (शकुंतला नरसिम्हन, 1999)।

प्रश्न यह है कि ऐसा सार्वभौमिक संगीत जो उत्तर से दक्षिण तक किसी न किसी रूप में पसरा हो, क्या वह स्त्रियों से अछूता रह गया होगा? क्या हवेली संगीत, या विष्णुपद महिलाएँ नहीं गाती होंगी? आज भी ध्रुपद गायन में मीराबाई के पदों को गाया जाता है, तो स्त्री-स्वर इस रूप में तो सदियों से मौजूद है ही। यह मुमकिन है कि कालांतर में ध्रुपद संगीत में जब वंशगत घरानों की परंपरा आई, तो यह मंदिरों के सहज विष्णु-कीर्तन से भिन्न एक कठिन शास्त्रीय प्रशिक्षण की ओर बढ़ने लगा हो।

15 praveen_jha_Layout 1 22-02-2024 16:09 Page 404

यह परंपरा वंशवादी भले न हो, लेकिन एक गुरु से उनके चुने हुए शिष्यों तक प्रसारित होने लगी। हवेली संगीत या विष्णुपद जहाँ सामाजिक संगीत के रूप में सभी गाते रहे, ध्रुपद संगीत मात्र एक ख़ास समूह के लोग ही सीखते और गाते रहे। यह कलावंतों तक तो पहले भी सीमित होता जा रहा था, लेकिन बानी ने इसे अधिक अनुशासित बना दिया। मसलन, ध्रुपद गायन के रियाज़ लंबे होने लगे, जो स्त्रियों के लिए भारतीय समाज में सुलभ नहीं था। उनके ऊपर पारिवारिक ज़िम्मेदारियाँ भी थीं। ध्रुपद से स्त्रियों की अनुपस्थिति का एक कारण यह भी हो सकता है।

ध्रुपद के अलग-अलग घराने हैं। बेहराम ख़ान के वंशजों ने डागुर/डागर घराने को आगे बढ़ाया। बिहार के दरभंगा और बेतिया में ज़मींदार-राजाओं ने दो ध्रुपद घरानों को प्रश्रय दिया। जहाँ डागर घराने में डागर वाणी गायी जाती रही, दरभंगा घराने में खंडार और गौहार वाणियों का मिश्रण आया। तलवंडी (पाकिस्तान) घराने में खंडार वाणी गाया गया। बेतिया घराने में सभी चार वाणियों का मिश्रण दिखता है। एक शाखा बंगाल के विष्णुपुर में गई, जो विष्णुपुर घराना कहलाई। बिहार के डुमराँव राजा ने डुमराँव घराने को आश्रय दिया। इन सभी घरानों में ऐतिहासिक रूप से स्त्री स्वर लगभग नहीं मिलता, और ये पुरुषों के घराने ही थे। घरानों के भीतर की इस पुरुष प्रधानता ने भी ध्रुपद में महिलाओं को हाशिए पर रखने में भूमिका निभाई।

माना जाता है कि अगर परिवार में संगीत का माहौल हो, और कोई बचपन से ही संगीत सीख रहा हो, तो उसकी क्षमता अधिक होती है। अमराम शेनफ़ील्ड ने अपनी पुस्तक *यू ऐंड हेरेडिटी* (1939) में इस बात की विस्तृत व्याख्या की है कि अगर माता-पिता संगीतकार हों तो उनकी संतानों में सत्तर प्रतिशत तक सांगीतिक प्रतिभा हो सकती है। लेकिन इस व्याख्या से पुरुष और महिला, दोनों में बराबर क्षमता ही होती है। अगर ध्रुपद घरानों में स्त्री संतानों को भी संगीत शिक्षा दी जाती, तो वे सफल होतीं। अब उसके उदाहरण मिल रहे हैं, जिनकी चर्चा मैं आगे करूँगा। इन घरानों से जुड़े सामाजिक कारणों से इतर महिलाओं की कम भागीदारी के तकनीकी कारण भी हैं, जिस पर हम आगे चर्चा करेंगे। ध्रुपद अपनी रूढ़ संरचना के कारण भी महिलाओं के लिए अनुपयुक्त रहा।

ध्रुपद का तकनीकी पक्ष

ध्रुपद गायकी और ख़याल गायकी में अगर एक आम श्रोता अंतर ढूँढे तो कुछ अंतर मंच पर ही दिखाई दे सकते हैं। ख़याल गायकी में तबले की संगत दिखती है तो ध्रुपद गायकी में पखावज की। लेकिन यह बहुत ही सपाट अंतर है। मंदिरों में पखावज का लम्बा इतिहास रहा है। इसी को दो फाँक कर क्रमशः 'जोड़ी तबला' का निर्माण हुआ। यह सहूलियत का मामला भी है। मसलन पुराने हार्मोनियम में पैर से हवा भरी जाती थी और दोनों हाथों से पियानो की तरह बजाया जाता था। लेकिन चूँकि मंच पर सभी पालथी मार कर बैठने लगे तो एक हाथ से हवा भरी जाने लगी, और दूसरे हाथ से सफ़ेद-काली कुंजियाँ दबानी होती हैं। इसी तरह

15 praveen_jha_Layout 1 22-02-2024 16:09 Page 405

पखावज से अधिक आसानी से बजाने के लिए तबला का विकास हुआ होगा। लेकिन आज भी ध्रुपद में पखावज क़ायम है। कर्नाटक संगीत में नादश्वरम उसी का मिलता-जुलता रूप है।

ध्रुपद में जो आलाप लिया जाता है, उसे नोम-तोम का आलाप कहते हैं। यह एक श्लोक का अपभ्रंश माना जाता है – 'ओम् अनंत तारन तारिणी तोम ओम् हरि नारायण ओम्'। इसे गायन में 'ओम् ता ना ना ना तोम री रे ना ना ओम्' कह कर गाते हैं। ख़याल में मुख्यतः आकार आलाप लिए जाते हैं, जो श्रवण में 'आ' रूप में सुनाई देते हैं। ख़याल गायकी में 'मुर्की' और 'खटका' का उपयोग होता है, जो ध्रुपद में नहीं होता। ध्रुपद में मीड़ का उपयोग किया जाता है। इसके अतिरिक्त ध्रुपद में मुरन, घूरन, गमक, सूत, हुदक, कम्पित, आंदोलन आदि का प्रयोग होता है।

ध्रुपद की बंदिश स्पष्ट होती है और इसकी भाषा अधिकांश संस्कृत है। इसके अतिरिक्त ब्रज भाषा, खड़ी बोली और कुछ लोक-भाषाओं के पद भी इसमें शामिल है। बंदिश के चार अंग होते हैं – स्थायी, अंतरा, संचारी और अभोग। यह दक्षिण भारतीय कर्नाटक संगीत के समकक्ष ही है, जिसके चार अंग हैं – पल्लवी, अनुपल्लवी, चरणम, चित्तस्वरम। ख़याल की बंदिश लोकभाषा जैसे ब्रजभाषा, अवधी, उर्दू, हिन्दी सभी में मिल जाती है। इसके दो अंग- स्थायी और अंतरा है। ख़याल में पूरी बंदिश गाने की प्रतिबद्धता नहीं है, जबकि ध्रुपद और कार्नाटिक संगीत में पदों को संपूर्ण गाने की परंपरा रही है।

उपरोक्त तकनीकी पक्ष में महिलाओं के लिए असुविधा नहीं नज़र आती। अगर वे ख़याल गायकी कर सकती हैं, तो ध्रुपद भी गा ही सकती हैं। लेकिन पारम्परिक रूप से ध्रुपद गायन के स्वरमान और स्केल में मंद्र सप्तक या भारी गले की आवाज़ पर बल दिया गया। यह महिलाओं के प्राकृतिक स्वर से मेल ही नहीं खाती। जैसे लता मंगेशकर के अधिकांश गीत सफ़ेद चार (पाश्चात्य संगीत के एफ़ स्केल), सफ़ेद तीन (ई) या काली दो (डी शार्प) स्केल में हैं। उन्हें अगर काली एक (सी शार्प) या सफ़ेद एक (सी) में गाने को कहा जाए, जो किशोर कुमार का स्केल है, तो उनके लिए संभवतः उपयुक्त न हो। ऐसे उदाहरण मिल सकते हैं, जब महिलाओं की भी पुरुषों की तरह बैरिटोन आवाज़ होती है, जैसे उषा उत्थुप की आवाज़, लेकिन वे अपवाद हैं। गंगूबाई हंगल की आवाज़ टॉन्सिल के ऑपरेशन के बाद पुरुषों जैसी भारी हो गई, तो वे उस स्केल में गा सकीं। ध्रुपद में गमक के उपयोग में जब भारी आवाज़ में गले को कम्पित करना होता है, वहाँ पुरुषों को प्राकृतिक सुविधा होती है। ख़याल गायकी में भी मंद्र सप्तक का उपयोग है और राग दरबारी जैसे रागों में महिलाओं को समस्या आती है। लेकिन ख़याल के लचीलेपन ने महिलाओं को यह स्वतंत्रता दी कि वे न सिर्फ़ गा सकें, बल्कि निपुणता से अपने स्वरमान पर गा सकें। अब जब ध्रुपद में भी महिलाएँ गा रही हैं, तो वह अपने स्केल के मंद्र सप्तक के गमक गा रही हैं, और वह उपयुक्त लगता है। इसलिए यह कहा जा सकता है कि दैहिक सीमा एक भ्रांति है, जो महिलाओं की ध्रुपद की शिक्षा में आड़े नहीं आ सकती।

15 praveen_jha_Layout 1 22-02-2024 16:09 Page 406

ध्रुपद में महिलाएँ : ऐतिहासिक और सांस्कृतिक धरातल

ध्रुपद में महिलाओं का प्रवेश कब हुआ, यह कहना कठिन है। वैदिक काल में संगीत समाज का अभिन्न अंग था, और इसका आयोजन स्त्रियाँ करती थीं। इनका ध्येय ईश्वर की उपासना से संबंधित था, जो दिनचर्या का हिस्सा था। उस समाज में 'समन' नामक एक सांगीतिक उत्सव भी होता था, जिसमें हालाँकि महिलाओं की मुख्य भूमिका नृत्य थी। साम-गान में मंत्रोच्चार पुरुषों का उत्तरदायित्व था। लेकिन वैदिक परंपराओं में ध्रुपद की उपस्थिति अस्पष्ट है। पन्द्रहवीं सदी से ही ध्रुपद गायन को व्यवस्थित रूप से देखा जा सकता है। उस काल में हवेली संगीत में स्त्रियों की भूमिका न रही हो, इसका कोई तर्कसंगत कारण नहीं लगता। तानसेन की किंवदंतियों में ताना और रिरी नामक बहनों का नाम आता है, जो गुजरात के वडनगर क्षेत्र में थी। कुछ स्रोत यह भी कहते हैं कि ध्रुपद का 'ता ना रि रि' अलाप उन्हीं के नाम से जन्मा, लेकिन इसके प्रमाण मिलने कठिन हैं।

पहली महिला ध्रुपद गायिका के रूप में असग़री बाई (1918-2006) का नाम उभरता है। वे ओरछा रियासत की राजगायिका थीं, जिन्होंने कम उम्र में ही उस्ताद ज़हूर ख़ान से तालीम ली। उनका ध्रुपद अपेक्षाकृत सुगम था और किसी वाणी से सीधे तौर पर नहीं जुड़ा था। जब रियासतों की व्यवस्था ख़त्म हुई, असग़री बाई भी लम्बे समय के लिए भुला दी गयीं। उन्होंने ध्रुपद सम्मेलनों में भी गाया लेकिन ध्रुपद के अन्य स्थापित घरानों के सामने उनका अस्तित्व गौण ही रहा। असग़री बाई पर एक वृत्तचित्र (प्रीति चंद्रियानी और बह्मानंद सिंह 2011) अवश्य उल्लेखनीय है। असग़री बाई के अलावा जिन्हें अक्सर पहली महिला ध्रुपद गायिका कहा जाता है, वे हैं ध्रुपद गायक लक्ष्मण भट्ट तैलंग की शिष्या और पुत्री मधु भट्ट तैलंग। हालाँकि, उनसे पहले उस्ताद नसीर अमीनुद्दीन डागर की शिष्या अशोका धर (जन्म-1946) गाती रही हैं।

मधु भट्ट तैलंग पहली मिसाल हैं जब किसी ध्रुपद गायक ने अपनी पुत्री को ध्रुपद सिखाना शुरू किया और उनकी आवाज़ को पखावज के उपयुक्त पाया। उन्होंने जब तेरह वर्ष की अवस्था में मंच पर ध्रुपद गया तो यह श्रोताओं के लिए भी एक आश्चर्य था कि महिलाएँ ध्रुपद गा सकती हैं। इस तरह दशकों पुरानी धारणा टूट रही थी कि तकनीकी कारणों से महिला ध्रुपद नहीं गा सकतीं। तैलंग ने ध्रुपद धाम संस्थान भी स्थापित किया।

ध्रुपद के घरानों में यह प्रथा डागर घराने से शुरू हुई। अशोका धर ने नसीर अमीनुद्दीन डागर से शिक्षा ग्रहण की। वे उनकी वरिष्ठतम शिष्या रहीं, और देश-विदेश के मंचों पर गायन किया। लेकिन, स्त्रियों का प्रवेश अधिकांश तभी शुरू हुआ, जब घरानों से इतर प्रशिक्षण के लोकतांत्रिक संस्थान स्थापित हुए, यानि ऐसे संस्थान जहाँ वंशवादी परंपरा न हो। संगीत महाविद्यालय पहले भी मौजूद थे लेकिन उनमें गुरु-शिष्य परंपरा का कलेवर न था।

1978 में आई टी सी नामक कम्पनी ने कलकत्ता में संगीत शोध संस्थान स्थापित किया। इस संस्थान की विशेषता थी कि यहाँ गुरु-शिष्य परंपरा से शिक्षा प्रारंभ हुई। किंतु इस संस्थान

15 praveen_jha_Layout 1 22-02-2024 16:09 Page 407

में मुख्यतः ख़याल गायकी और वादन की ही शिक्षा दी जाती। इसके तीन वर्ष बाद 1981 में अशोक वाजपेयी और मणि कौल जैसे कला-प्रेमियों ने ज़िया फ़रीदुद्दीन डागर से अनुरोध किया कि वे भोपाल में एक संस्थान की ज़िम्मेदारी लें। फिर जन्मा ध्रुपद केंद्र। उदय भवालकर और गुंदेचा बंधु जैसे कलाकार इस संस्थान के शुरुआती प्रशिक्षुओं में रहे। इसी संस्थान के सुलभा सर्राफ़ और मनोज सर्राफ़ ध्रुपद के पहले महिला-पुरुष युगल जोड़ी बने। सोमबला सतले कुमार और सुलेखा काम्बले जैसी गायिकाएँ भी यहीं से उभरीं। बाद में गुंदेचा बंधुओं से स्वयं एक ध्रुपद संस्थान की भी स्थापना की और महिला ध्रुपद गायिकाओं का उदय होना शुरू हुआ।

इससे यह संकेत मिलता है कि ऐतिहासिक रूप से सामाजिक कारणों और घरानों की रूढ़ संरचना के कारण महिलाओं का ध्रुपद में प्रवेश कम रहा। जब ये मार्ग खुल गए, उनकी भागीदारी बढ़ती चली गई। मेघना सरदार केंजाले ने उदय भवलकर से शिक्षा ग्रहण की। आलिया राशिद एक दृष्टिबाधित गायिका हैं, जिन्होंने ध्रुपद संस्थान से प्रशिक्षण लिया और पाकिस्तान की पहली महिला ध्रुपद गायिका बनीं। आस्था त्रिपाठी, रूपाली जैन, अमिता सिन्हा महापात्रा, जाह्नवी फंसालकर और अनुजा बरोड़े जैसे नाम इस संस्थान से जुड़ते चले गए। यहाँ से सीख कर गयी कई महिलाएँ विदेश में भी हैं, जैसे मैरिएना स्वचेक और सिलीना वाडीयर।

इसके साथ ही स्थापित घरानों ने भी अपना योगदान देना शुरू किया। दरभंगा घराने की संतान रूबी मल्लिक इसके ऐसे उदाहरणों में हैं, जब किसी ऐतिहासिक ध्रुपद घराने में स्त्री गायिका आई। इसके अतिरिक्त इसी घराने की शिष्या नीता रामानाथन, नमिता यादव, सुचेता रक्षित और अमीलिया कुनी (इटली) हैं। ज़िया फ़रीदुद्दीन डागर की शिष्या पेलवा नाइक ध्रुपद गा रही हैं। उस्ताद रहीम फ़हीमुद्दीन डागर की शिष्या काबेरी कार ध्रुपद और ख़याल दोनों ही गाती रही हैं। कुछ अन्य ध्रुपद गायकों की बेटियाँ भी सम्मिलित हुईं जैसे श्री दत्त शर्मा की बेटी अदिति शर्मा गर्ग।

15 praveen_jha_Layout 1 22-02-2024 16:09 Page 408

इनमें अधिकांश ने पिछले चार दशकों में ही प्रशिक्षण प्रारंभ किया, और कुछ अभी तक मंचीय प्रस्तुति तक नहीं पहुँच सकी हैं। अगर ध्रुपद के चार सौ वर्षों से अधिक के इतिहास को लें, तो इसका नब्बे प्रतिशत काल महिलाओं से रहित है। ध्रुपद में महिलाओं का प्रवेश वंशवादी परंपरा से संस्थागत परंपरा की दिशा में जाने से संभव हुआ। लेकिन इससे यह सिद्ध नहीं होता कि गुरु-शिष्य परंपरा में दोष था। बल्कि, जिस तरह की तैयारी आज भी घरानेदारी में दिखती है, वह इन संस्थाओं के विद्यार्थियों में अपेक्षाकृत कम दिखती है। इसका सीधा कारण है कि वहाँ संगीत घर के माहौल में ही होता है। वे बचपन से अपने पिता के साथ संगीत को देख-सुन और समझ रहे होते हैं। वह पर्यावरण या माहौल किसी संस्था में मिलना कठिन है।

स्त्री स्वर का भविष्य

ध्रुपद के संरक्षण और प्रसार के लिए महत्त्वपूर्ण है कि महिलाओं की अधिकाधिक भागीदारी हो। महिलाओं के प्रवेश के साथ ही ध्रुपद गायन की शैली में स्वाभाविक अंतर आया है। पहले ध्रुपद गायकी में तार-सप्तक का उपयोग कम था, और मंद्र-सप्तक (खड़ज) का काम अधिक था। अब पुरुष गायक भी मध्यम और तार सप्तक का बहुधा उपयोग कर रहे हैं। स्त्री गायिकाओं के लिए तो यह सुलभ है ही, श्रोता भी इस बदलाव को पसंद कर रहे हैं। इसका कारण यह भी है कि ध्रुपद की सीमाएँ बढ़ गई हैं, और ख़याल गायकी पसंद करने वाले भी इस गायकी से जुड़ रहे हैं।

एक प्रयोग की सम्भावना बनती है कि स्त्री और पुरुष साथ गाएँ। ध्रुपद में पुरुषों की जुगलबंदी की लम्बी परंपरा रही है। डागर बंधु, मल्लिक बंधु, गुंदेचा बंधु आदि जोड़े में ही गाते रहे हैं। महिला-पुरुष जुगलबंदी सिर्फ़ सर्राफ़ दम्पत्ति में देखने को मिलती है। लेकिन, ऐसी जुगलबंदी में समस्या 'स्केल' की है, जो स्वाभाविक रूप से पुरुष और महिला का भिन्न होता है। ऐसे में पंडित जसराज का एक प्रयोग उल्लेखनीय है। उन्होंने एक प्राचीन 'मूर्छना' पद्धति का प्रयोग किया, जिसके अनुसार दो 'स्केल' पर दो राग साथ गाए जाने से जुगलबंदी संभव हो पाती है। इसे उन्होंने 'जसरंगी' नाम दिया। ऐसे ही प्रयोग ध्रुपद गायकी में भी मुमकिन हैं, जब स्त्री और पुरुष एक ही मंच पर साथ गाएँगे, और श्रोताओं को असुविधा नहीं होगी। साथ ही संगीत की बढ़ती व्यावसायिकता के इस दौर में श्रोता पुरुष और महिला, दोनों स्वरों को सुनना पसंद करते हैं। बाज़ार के बढ़ते दबाव के नाते भी इस क्षेत्र में महिलाओं की भूमिका बढ़ी है।

संगीत का समाज तीन आधारों पर टिका है – गुरु, शिष्य/प्रशिक्षु, और श्रोता। इस समाज के विस्तार के लिए इन तीनों आधारों का सशक्त होना आवश्यक है। वर्तमान स्थिति यह है कि ध्रुपद शिक्षण के मुख्य संस्थान भोपाल में ही हैं। इसके अतिरिक्त प्रयाग में पंडित विदुर मल्लिक संस्थान मौजूद है, और कुछ अन्य निजी शिक्षा संस्थान भी हैं। इनके अधिक विस्तृत

15 praveen_jha_Layout 1 22-02-2024 16:09 Page 409

होने से महिलाओं का प्रवेश बढ़ता जाएगा। मसलन, राजधानियों और मुख्य विश्वविद्यालयों से संलग्न *सोसायटी फ़ॉर प्रमोशन ऑफ़ इंडियन क्लासिकल म्यूज़िक ऐंड कल्चर इन यूथ* (स्पिक मैके) जैसी संस्थाएँ युवाओं को इस ओर अधिक आकर्षित कर सकती हैं जिसके भारत में 800 से अधिक और विदेश में 100 से अधिक निकाय मौजूद हैं। दरभंगा घराने के प्रशांत और निशांत मल्लिक इसके अंतर्गत ध्रुपद कार्यशालाएँ कराते हैं, जिनमें पुरुष और महिला दोनों भाग लेते हैं।

इन माध्यमों से अगले दशक में महिला गायकों और श्रोताओं में गुणात्मक वृद्धि की सम्भावना दिखती है, जो भविष्य के समाज के लिए एक सकारात्मक सम्भावना है। पिछले दशक में ध्रुपद शिक्षा में 'ऑनलाइन शिक्षा' भी जुड़ी है, जिसमें उच्च कोटि की तकनीकों का प्रयोग कर सुदूर क्षेत्रों में संगीत शिक्षा दी जा रही है। प्रशांत मल्लिक ने बातचीत में कहा कि उनके शिष्य दक्षिण भारत, अमेरिका, युरोप, और मध्य एशिया में मौजूद हैं, जो नियमित ऑनलाइन शिक्षण ले रहे हैं और उनकी प्रगति अच्छी है। यह महिलाओं के लिए भी सुविधाजनक सिद्ध हो रहा है, और बालिकाएँ स्कूल के बाद संगीत-शिक्षा ले पा रही हैं। इसके पीछे एक कारक समाज में क्रय क्षमता का बढ़ना भी है, कि अब मध्य-वर्गीय परिवारों में भी संगीत पर निवेश किया जा रहा है। एक और कारण संचार माध्यमों जैसे टेलीविज़न पर आने वाले कार्यक्रमों, यूट्यूब चैनलों आदि से बढ़ता प्रचार-प्रसार भी है।

ध्रुपद की लोकप्रियता बढ़ाने के लिए कुछ और प्रयोग भी दिखते हैं, जिससे महिलाओं की रुचि बढ़ी है। अब कुछ नए पदों को गाया जा रहा है, जो पारम्परिक रूप से नहीं गाए जाते थे। इसी तरह स्त्रियों के प्रिय माने जाने वाले राग, जैसे मधुवंती पहले ध्रुपद में कम गाए जाते थे। अब उनका प्रवेश हो रहा है। स्त्रियाँ अपने कुछ आधुनिक समूह भी बना रही हैं, जिनमें 'ध्रुपद सिस्टर्स' उल्लेखनीय है। यह समूह तीन ध्रुपद गायिकाओं अमीता सिंहा महापात्रा, जाह्नवी फंसालकर और अनुजा बोरडे (पखावज वादक) ने मिल कर बनाया है। तीनों ही ध्रुपद संस्थान, भोपाल से प्रशिक्षित हैं। वे पारम्परिक मंचों का उपयोग नहीं करतीं, बल्कि सामाजिक माध्यमों से श्रोताओं को जोड़ रही हैं। आधुनिक युग में इस तरह के साधन उपलब्ध हैं कि संगीत के प्रसार के लिए किसी बड़े बैनर की संगीत कम्पनी की आवश्यकता नहीं। श्रोता भी सम्मेलनों में पहुँचने के बजाय घर बैठे संगीत देखना या सुनना पसंद करने लगे हैं।

निश्चितरूपेण यह हिंदी पट्टी में एक आधुनिक हस्तक्षेप है, जो संगीत के क्षेत्र में देखा गया। अगले कुछ दशकों में स्त्री-स्वर अधिक संगठित, प्रत्यक्ष और स्वीकार्य होता जाएगा। लेकिन, कला क्षेत्र में प्रतिभाएँ किसी सामाजिक आंदोलन से उत्पन्न नहीं की जा सकतीं। यह एक सतत प्रक्रिया है, जो रुचि और साधना पर आधारित है। ध्रुपद में स्त्रियों के लिए द्वार खुलना इस दिशा में एक सीढ़ी मात्र है।

15 praveen_jha_Layout 1 22-02-2024 16:09 Page 410

संदर्भ

अलोकपर्णा दास (2019), *ध्रुपद, विष्णुपद ऐंड हवेली संगीत* (किंडल संस्करण), गोया पब्लिशिंग, नई दिल्ली.

आर. के. दास (2014), *डेल्विंग डीप इंटू द ध्रुपद टर्मिनॉलजी*, *ध्रुपद ऐंड डागर्स*, ई-बुक, ऐमेज़ॉन किंडल.

कैथरीन एलिस (2009), 'सोसियॉलॉजी ऑफ़ म्यूज़िक', हार्पर स्कॉट और जिम सैम्सॉन (सं.), *ऐन इंट्रोडक्शन टू म्यूज़िक स्टडीज़*, केम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रेस, केम्ब्रिज : 43-58.

गजेंद्र नारायण सिंह (2011), *बिहार की संगीत परंपरा*, तक्षशिला प्रकाशन.

डैनियल न्यूमन (1990), *लाइफ़ ऑफ़ म्यूज़िक इन नॉर्थ इंडिया*, युनिवर्सिटी ऑफ़ शिकागो प्रेस, शिकागो.

निवेदिता सिंह (2004), *ट्रैडिशन ऑफ़ हिंदुस्तानी म्यूज़िक : अ सोसियोलॉजिकल अप्रोच*, कनिष्क पब्लिशर, नई दिल्ली.

प्रीति चंद्रियानी और ब्रह्मानंद सिंह (निर्देशक), (2011), *असग़री बाई*, मोबिस फ़िल्म्ज़, https://youtu.be/BTSbWhj6BL8

शकुंतला नरसिम्हन (1999), ध्रुपद ऐंड कर्नाटक म्यूज़िक, *जर्नल ऑफ़ इंडियन म्यूज़िकोलॉजिकल सोसायटी* : 135-140.

शेनफ़ील्ड अमराम (1939), *यू ऐंड हेरेडिटी*, लिप्पिनकोट, फ़िलाडेल्फ़िया.

सत्यवती शर्मा (1995), *संगीत का समाज शास्त्र*, पंचशील प्रकाशन, जयपुर.

सबा दीवान (2019), *तवायफ़नामा*, वेस्टलैंड, चेन्नई.

सारंग देव (सं.) (1943), *संगीत रत्नाकर*, अदयार लाइब्रेरी, चेन्नई.